आत्मपरकता का भाव
(Notion of Subjectivity)

(i) विषयी तथा विषय

कृष्ण चन्द्र कहते हैं कि 'विषयीपरकता' या 'आत्मपरकता' (Subjectivity) शब्द का प्रयोग इतने विभिन्न ढंगों से होता रहा है कि इस शब्द के अर्थ को निश्चित करना कठिन

Scanned by TapScanner

हो जाता है। किन्तु, इस शब्द के निहितार्थ को समझने के लिये कृष्ण चन्द्र इसके सबसे व्यापक अर्थ से प्रारम्भ करते हैं। इसका सबसे प्रचलित साधारण मतभेद से परे का अर्थ है कि 'आत्म परकता' 'आत्मरूप जीवन' (Cult of the subject) है। इस, अर्थ से भी इतना तो स्पष्ट होता है कि 'आत्मपरकता' विषय एवं 'वस्तुनिष्ठता' से पृथक होना है। 'आत्म-परकता' को इस प्रकार से अभावात्मक रूप में समझने के दो लाभ हैं—प्रथमतः इतना तो होता है कि जब यह जानना कठिन प्रतीत हो कि 'वस्तु क्या है?', तो वह क्या नहीं है' से प्रारम्भ करना लाभप्रद प्रतीत होता है। वही बात यहां भी लागू है। किन्तु इस स्थल पर अभावात्मक विवरण से प्रारम्भ करने का मुख्य लाभ दूसरा है। 'आत्मपरकता' के संदर्भ में यह स्पष्ट हो जायगा कि आत्मपरकता का यह अभावात्मक विवरण, उसके भावात्मक स्वरूप को निर्धारित करता है, उसके भावात्मक स्वरूप का अंश है, जिसके कारण इस विवरण से 'आत्मपरकता' का भावात्मक स्वरूप स्पष्ट होता है।

अतः 'आत्मपरकता' के स्वरूप के विश्लेषण में सर्वप्रथम हम कह सकते हैं कि यह विषयनिष्ठता नहीं है। आत्मपरकता की विधायें विषयपरकता की विधाओं से मुक्त होने के ढंग हैं। "The modes of subjectivity are the ways of freeing oneself from the modes of Objectivity."* अतः आत्मपरकता की प्राथमिक विधा है आत्म की यह अवगति कि वह विषय नहीं है, विषयरूप नहीं है। "This cult of the subject, as it might be called, takes various forms, but they all involve a feeling of disassociation of the subject from the object, an awareness of the subject as what the object is not."**

इसका अब और विश्लेषण करें। 'विषय' में अनिवार्यतः अर्थ बोध है, अर्थ से जो सूचित होता है वह 'विषय' है। हमें जब विषय की अवगति होती है, तो वस्तुतः हमें एक अर्थबोध होता है, उस अवगति में अन्तर्वस्तु 'अर्थ' ही है। किन्तु 'आत्म' या 'आत्मपरकता' की अवगति में इस प्रकार के अर्थनिर्देश की आवश्यकता नहीं रहती। 'आत्म' या 'विषयी' अर्थहीन शब्द नहीं हैं, किन्तु इतना है कि इनकी जो अवगति है, उस अवगति का अंश या आधार कोई 'अर्थ' या अर्थबोध नहीं है। कृष्ण चन्द्र कहते हैं कि 'विषयी' में या 'आत्म-परकता' में अर्थ क्षमता नहीं है—(meanable नहीं है), किन्तु वह इस प्रकार से कथनीय है कि उसका तात्पर्य स्पष्ट हो जाय (Significant speakable है)। इन दो उक्तियों 'meanable' तथा 'significant speakable' के व्यवहार से ही 'आत्मपरकता' तथा 'विषयपरकता' का भेद स्पष्ट होता है, किन्तु उसकी और व्याख्या आवश्यक है।

'अर्थ' शब्द में एक व्यापकता है। यदि कोई व्यक्ति किसी शब्द के उपयोग से कुछ अर्थ-निर्देश करता है, तो उस अर्थ-निर्देश का आधार यही है कि हर सुनने वाला भी उस शब्द का उसी अर्थ में उपयोग कर सकता है। यदि 'मेज' शब्द का अर्थ यह मेज है, तो उस

Scanned by TapScanner

रूप में हम भी 'मेज' शब्द का उपयोग कर सकते हैं, तथा अन्य भी। इस दृष्टि से 'विषय', जिसका बोध अर्थ के द्वारा होता है, में एक प्रकार की समानता आ जाती है, व्यापकता आ जाती है। कृष्ण चन्द्र इस बात को एक बड़े मार्मिक तकनीकी ढंग से स्पष्ट करते हैं। वे मान लेते हैं कि 'यह' (this) शब्द विषय का सूचक है। अब वे कहते हैं कि एक व्यक्ति 'यह' (this) कह कर किसी विशेष वस्तु की ओर संकेत करता है, पर यह स्पष्टतया सम्भव है कि दूसरे व्यक्ति भी 'यह' (this) कह कर उसी विशेष वस्तु को सूचित करे। यहां 'यह' शब्द इस प्रकार प्रयुक्त हो रहा है कि कहने वाले तथा सुनने वाले दोनों इसका 'अर्थ' 'यह विशेष वस्तु' समझ रहे हैं।

किन्तु 'विषय' या 'आत्म' को इस प्रकार सूचित नहीं किया जा सकता, उसका इस प्रकार अर्थ निर्देश नहीं हो सकता। उदाहरणतः 'आत्म' के लिये 'मैं' (I) शब्द का उदाहरण लें। जब मैं 'मैं' (I) शब्द का उपयोग करता हूं तो मेरा निर्देश अपनी ओर है, और जब कोई अन्य 'मैं' (I) शब्द का उपयोग करता है तो वह मुझे नहीं अपने आप को सूचित करता है। अतः इसमें उस प्रकार की व्यापकता आ ही नहीं सकती जो विषय सूचित करने वाले शब्द 'यह' (this) में है। 'मैं' (I) शब्द पूर्णतया विशिष्ट है। इस शब्द की इसी विशिष्टता के कारण कृष्ण चन्द्र 'मैं' (I) शब्द को 'आत्म' या 'विषयी' का प्रतीक बना देते हैं। वे 'तुम' (You) या 'वह' (He) से मैं (I) को अधिक महत्त्व देते हैं, क्योंकि वह उन दोनों से अधिक विशिष्ट है। उन दोनो में कुछ व्यापकता आ जाने की सम्भावना है, कि 'मैं' (I) से सदैव कोई एक विशेष इस रूप में सूचित होगा कि कोई अन्य उसे 'मैं' (I) कह कर सूचित नहीं कर सकता। इन दो प्रतीकों—विषय के प्रतीक के रूप में 'यह' (this) तथा आत्म के प्रतीक के रूप में 'मैं' (I)—का भेद आत्मपरकता एवं विषयपरकता के भेद पर स्पष्ट प्रकाश देता है। 'यह' शब्द से 'विषय' सूचित होता है, इसका अर्थ है कि 'विषय' में कुछ व्यापकता रहेगी। इसके विपरीत 'मैं' (I) शब्द पूर्णतया विशिष्ट है, और इसमें जो व्यापकता है वह 'विषय' में नहीं। यह विशिष्ट है क्योंकि हर कोई इस शब्द से अपने आप को ही सूचित कर सकता है, इसकी व्यापकता इस ढंग की है कि हर कोई अपने लिये ऐसा व्यवहार कर सकता है। 'यह' शब्द की व्यापकता इससे भिन्न है क्योंकि इस शब्द से जो एक व्यक्ति के द्वारा सूचित किया जाता है उसी वस्तु को अन्य व्यक्ति भी 'यह' ही कह कर सूचित कर सकते हैं।

इन दोनों का भेद एक दूसरे प्रकार से भी स्पष्ट होता है। यदि हम 'विषय' या 'वस्तु' की चेतना का विश्लेषण करें तो वहां यह स्पष्ट हो जाता है कि वह कि वह चेतना सदैव किसी 'अर्थबोध' के द्वारा संरचित है। उदाहरणतः यदि कोई मनुष्य सागरतट पर प्रकाश-स्तम्भ से कहता है कि एक जहाज आ रहा है, तो यहां जो 'जहाज के आने' की चेतना होती है, वह उसके द्वारा कहे गये शब्दों के अर्थबोध के आधार पर होती है। इसके विपरीत जब 'मैं' की चेतना होती है, तो यह चेतना किसी अर्थबोध के द्वारा संचित नहीं है। ऐसा नहीं है कि हमें 'मैं' की चेतना 'मैं' शब्द के अर्थबोध के आधार पर होती है। यह बोध तो 'मैं' की 'आत्म-अभिव्यक्ति' की चेतना है।

Scanned by TapScanner

इस संदर्भ में एक अन्य विचार भी प्रासंगिक प्रतीत होता है। यदि 'विषयी' तथा 'विषय' अथवा 'आत्म' एवं 'वस्तु' के प्रयोगों पर ध्यान दें तो स्पष्ट होगा कि 'आत्म' तथा 'विषयी' शब्दों को 'विषय' कहा जा सकता है, किन्तु 'विषय' को 'आत्म' या विषयी कभी नहीं कहा जा सकता। पुनः 'मैं' और 'यह' की भाषा में इस बात को रखते हुए कृष्ण चन्द्र इस विचार को इस प्रकार व्यक्त करते हैं: यह कथन कि 'यह मैं हूं' (This is I) असत्य है, जबकि कथन 'मैं यह हूं' (I am this) को असत्य नहीं कहा जा सकता। हम इस प्रकार की उक्ति अर्थपूर्ण ढंग से दे सकते हैं कि 'मैं पिता हूं', 'मैं वकील हूं' आदि, किन्तु हम किसी वस्तु की ओर संकेत करते हुए यह नहीं कह सकते 'यह मैं हूं' या 'यह आत्म है'।

इस स्थल पर कोई कह सकता है कि मैं अपने शरीर की ओर संकेत करते हुए कह सकता हूं कि 'यह मैं हूं', और यह तो असत्य नहीं। कृष्ण चन्द्र ने इस सम्भावना पर भी विचार किया है और कहा है कि यह भी असत्य ही है। जब मैं अपने शरीर को 'यह' कहते हुए कहता हूं कि 'यह मैं हूं' तो यह कथन असत्य ही है क्योंकि 'मैं' अथवा 'आत्म' की चेतना शरीर से भिन्न होने की चेतना भी है।

तो इस अन्तर के आधार पर कहा जा सकता है कि कभी-कभी भाषीय व्यवहार में 'आत्म' को विषयरूप बना दिया जाता है किन्तु इस प्रकार की 'विषयरूपता' आत्म का लक्षण नहीं है। जब हम 'आत्म' को 'यह' या 'वह' कहते भी हैं, तो आत्म विषय या वस्तु नहीं बन जाता। यहां भी 'आत्म' की अनुभूति में 'विषय' से भिन्न होने की अनुभूति निहित रहती है। इसी कारण कृष्ण चन्द्र कहते हैं कि आत्म-बोध का अनिवार्य उपादान 'विषय' का निषेध है। "We know the self not as object but in knowing the distinction of the object from it, or in knowing the object as distinct from it."*

तब यह अवश्य है कि आत्म अपनी आत्म-अनुभूति के मार्ग में प्रगति का प्रारम्भ अपने को विषय से सम्बन्धित कर ही करता है। किन्तु उस मार्ग में आगे बढ़ने के लिये उसे उस सम्बन्ध का निषेध करना पड़ता है। यह निषेध मात्र इस आधार पर होता है कि आत्म को विषय में अपनी भिन्नता की अनुभूति हो जाय। इस भिन्नता की यही अनुभूति आत्मानुभूति के मार्ग में अग्रसर होने का प्राथमिक आधार है।

इससे यह बात स्पष्ट होती है कि आत्मपरकता (Subjectivity) का प्रथम स्तर आत्म तथा विषय की भिन्नता की अनुभूति है। किन्तु, इस सम्भावना से यह भी स्पष्ट होता है कि इस स्तर में 'आत्म' तथा 'विषय' एक प्रकार से सम्बन्धित भी है। उस दृष्टि से 'आत्म' वह है जो विषय में अपनी पृथकता पर बल देता है, और विषय वह है जिससे आत्म अपने को पृथक करता है।

इस विवेचना से 'आत्म' तथा 'विषय' के सम्बन्ध पर एक महत्त्वपूर्ण विचार प्रकाश में आ जाता है। यह तो स्पष्ट ही हो गया कि एक प्रकार से इन दोनों में पारस्परिक सम्बन्ध

Scanned by TapScanner

है ही। किन्तु महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आत्मपरकता के विकास के हर स्तर में जो 'निषेधित' होता है वह उस स्तर में 'विषय' ही बन जाता है क्योंकि विषय वही है जिससे आत्म अपने को मुक्त करता है। तथा इस 'विषय' की दृष्टि से जो इससे पृथक हो रहा है वह उस संदर्भ में विषयी अथवा आत्म (Subject) है। उदाहरणतः और ये सभी बातें थोड़ी देर ही में स्पष्ट की जायेंगी। 'वस्तुजगत' आत्म-शरीर की अवगति के संदर्भ में 'विषय' (Object) है, क्योंकि हम अपने शरीर की अवगति में ही अपनी वस्तुजगत से भिन्नता की अनुभूति कर पाते हैं। अतः इस वस्तुजगत के सम्बन्ध अपने शरीर की अवगति विषयी (Subject) है आत्मरूप है। [जिसे कृष्ण चन्द्र शरीरमूलक आत्मपरकता (Bodily subjectivity) कहते हैं]। अब यह 'शरीर' 'प्रतिमा एवं विचार' (Image and Thought) के सम्बन्ध में 'विषय' है क्योंकि 'शरीर' के निषेध के आधार पर ही आत्म प्रतिमाओं तथा विचारों के जगत को अपना पाता है। अब 'शरीर' की ओर से देखने पर प्रतिमा तथा विचार जगत, जिसे भट्टाचार्य मानसिक 'आत्मपरकता' (Psychic subjectivity) कहते हैं, विषयी या आत्मरूप बन जाता है।

इन बातों की स्पष्ट जानकारी के लिये आत्मपरकता (Subjectivity) का और विस्तृत विश्लेषण आवश्यक है।

(ii) आत्मपरकता का कुछ और विश्लेषण (Further analysis of Subjectivity)

वस्तुतः, कृष्ण चन्द्र के दार्शनिक विचारों का केन्द्र 'आत्मपरकता' है। इसका उन्होंने विस्तृत विश्लेषण किया है। अभी तक हमें इसकी प्राथमिक अवगति हुयी है, जिसमें हम इतना ही जान पायें हैं कि आत्मपरकता (Subjectivity) 'विषयपरकता' (Objectivity) नहीं है। अब हम इस विश्लेषण को कुछ और आगे बढ़ायें।

'आत्मपरकता' आत्म की विषय से भिन्नता की अवगति है। इस अवगति का आधार क्या है? भट्टाचार्य कहते हैं कि इस भेद की अवगति का आधार हमारे 'अपने शरीर की अवगति' है। इसे एक उदाहरण के द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न करें। मैं अपने समक्ष चाय का एक प्याला देख रहा हूं। 'मैं' को इस वस्तु 'चाय के प्याले' से अपनी भिन्नता की अनुभूति किस आधार पर होती है? मैं इस प्याले के सम्पर्क में अपने 'शरीर' के द्वारा आता हूं, मेरी विभिन्न इन्द्रियां—चाक्षुण, स्पर्श, घ्राण आदि इस वस्तु से मेरा सम्पर्क स्थापित करती हैं। किन्तु यही सम्पर्क यह भी अवगति देता है कि ये इन्द्रियां तथा मेरा शरीर 'प्याले' से भिन्न हैं। अतः वस्तुजगत से अपनी भिन्नता की अवगति का आधार अपने शरीर की अवगति है। यह आत्मपरकता (Subjectivity) का रूप हुआ जिसमें आत्म की वस्तुजगत से भिन्नता इस बात पर आधारित है कि 'आत्म' शरीररूप हो गया है। इस स्तर की आत्मपरकता को कृष्ण चन्द्र 'शरीररूप आत्मपरकता' (Bodily subjectivity) कहते हैं।

कृष्ण चन्द्र स्वीकारते हैं कि वास्तविक आत्मपरकता का पहला स्तर यह 'शरीररूप आत्मपरकता' है, किन्तु यह आत्मपरकता की अनुभूति का प्राथमिक चरण है—उसका

Scanned by TapScanner

प्रारम्भ है, यह पूर्ण आत्मपरकता की अनुभूति नहीं। वस्तुयें बाह्य एवं वस्तुनिष्ठ प्रतीत होती हैं, 'शरीर' के सम्पर्क में आने पर ही, और इसी कारण कृष्ण चन्द्र कहते हैं कि 'आत्म-शरीर' की अवगति में हम आत्मपरकता के क्षेत्र में प्रवेश कर जाते हैं। किन्तु, वे कहते हैं कि यदि 'आत्मपरकता' का विश्लेषण हो तो स्पष्ट हो जायगा कि यह तो एक स्तर मात्र है, क्योंकि 'आत्मपरकता' की अनुभूति का एक अंश 'शरीर से भिन्न होने' की भी अनुभूति है। अपने शरीर की अवगति इन्द्रिय-आश्रित है, आत्मपरकता की अनुभूति इन्द्रियों के माध्यम से नहीं होती। साथ-साथ यह भी प्रायः स्पष्ट है कि 'शरीर' तथा 'मैं' एकरूप नहीं हैं, दोनों का तादात्म नहीं स्वीकारा जा सकता क्योंकि 'मैं' की चेतना में 'मैं' तथा 'शरीर की भिन्नता की चेतना' भी निहित रहती है।

अतः आत्मपरकता की अनुभूति शरीररूपी आत्मपरकता के स्तर पर रुकी नहीं रहती। इस 'शरीर' का भी निषेध हो जाता है, आत्मपरकता को 'शरीर' में अपनी भिन्नता की अवगति हो जाती है। इस अवगति का जो रूप उभर आता है उसमें आत्मपरकता का जो स्तर प्रकाश में आता है, उसे कृष्ण चन्द्र मानसिक आत्मपरकता (Psychic subjectivity) कहते हैं। जब भी हम किसी वस्तु या विषय को देखते हैं जानते हैं, एहसास करते हैं, तो उस विषय के साथ हमें जानने, देखने, एहसास करने की भी अवगति होती है। इसमें जो अवगति होती है वह मानसिक तथ्य (Psychic fact) है। इसके अन्तर्गत प्रतिमायें (Images) तथा विचार (Thought) आते हैं। यह आत्मपरकता की अनुभूति का दूसरा स्तर है जहां आत्म अपने को मानसिकता से एकरूप कर लेता है।

किन्तु, कृष्ण चन्द्र का कहना है कि यह भी वास्तविक आत्मपरकता नहीं है। इसका एक कारण तो यह है कि मानसिक तथ्य किसी न किसी रूप में 'वस्तु' से सम्बन्धित रहते ही हैं--वे वस्तु की प्रतिमायें अथवा वस्तु के विचार प्रतीत होते हैं। दूसरा कारण यह भी है 'मैं' की अनुभूति, जो आत्मपरकता की निश्चित विधा है, उसमें यह भी अनुभूति रहती है कि वह मानसिक तथ्य नहीं है, प्रतिमा या विचार नहीं है। इसका अर्थ हुआ कि 'आत्म-परकता' मानसिक तथ्यों के स्तर पर भी नहीं रुकती, इसका निषेध करते हुए इससे और आगे अग्रसर होती है।

कृष्ण चन्द्र कहते हैं कि आत्मपरकता का इसके बाद का स्तर भावनात्मक अनुभूति (Feeling) का स्तर है। भावनात्मक अनुभूति--आत्मपरकता की शुद्धता का पहला स्तर है, क्योंकि इसमें 'अर्थ' (Meaning) का कोई 'महत्त्व' नहीं रह जाता। 'प्रतिमा' तथा 'विचार' के स्तर तक 'अर्थ' से सम्पर्क किसी न किसी प्रकार बना रहता है, किन्तु भावनात्मक अनुभूति का अर्थपूर्ण या अर्थहीन होने का प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु, कृष्णचन्द्र का कहना है कि आत्मपरकता को इस स्तर से भी ऊपर उठनाहै--क्योंकि यहां 'अर्थ' से एक प्रकार अभावात्मक सम्बन्ध बना रह जाता है, क्योंकि इसमें यह अवगति रहती है कि भावनात्मक अनुभूति के लिये 'अर्थ' का प्रश्न प्रासंगिक नहीं है। अतः यह अभावात्मक सम्बन्ध इसके शुद्ध आत्मपरक रूप को दूषित कर देता है। शुद्ध आत्मपरकता

Scanned by TapScanner

की अनुभूति के लिये इस अभावात्मक सम्बन्ध से भी ऊपर उठना है---उससे भी मुक्त होना है।

यही ऊपर उठना अन्तर्निरीक्षण (Introspection) तक ले जाता है---जो कृष्ण चन्द्र के अनुसार आत्मपरकता का शुद्ध रूप है, क्योंकि इसमें 'मैं' की चेतना है। कृष्ण चन्द्र का यह अन्तर्निरीक्षण मनोवैज्ञानिक अन्तर्निरीक्षण नहीं, क्योंकि यहां निरीक्षणकर्त्ता तथा उसके विषय का अन्तर मिट जाता है। यहां अन्तर्निरीक्षण 'अहं-चेतना' ही है। इसी कारण कृष्ण चन्द्र कहते हैं कि आत्म को व्यक्त करने का सबसे उपयुक्त प्रतीक 'मैं' (I) ही है। 'तुम' (You) या 'वह' (He) आदि से भी आत्म का निर्देश होता है, किन्तु उनमें से कोई वैसा विशिष्ट नहीं जैसा कि 'मैं' (I) है। क्योंकि 'वह' (He) का उपयोग एक ही व्यक्ति के लिये विभिन्न लोगों का द्वारा हो सकता है, जबकि 'मैं' (I) का प्रयोग हर व्यक्ति केवल अपने लिये कर सकता है। उसी प्रकार 'तुम' शब्द में भी 'मैं' जैसी विशिष्टता नहीं। जब मैं किसी को 'तुम' कहता हूं, तो मुझे उसकी अवगति उसके 'शरीर' के प्रत्यक्ष के द्वारा ही होती है। यदि मेरे समक्ष कोई 'शरीर' न हो तो मैं 'तुम' शब्द का प्रयोग ही नहीं कर सकता। 'मैं' शब्द के साथ ऐसी बात नहीं है। मुझे आत्म चेतना अपने शरीर की अवगति के माध्यम से नहीं होती। इसी कारण कृष्ण चन्द्र कहते हैं कि 'मैं' (I) आत्म को व्यक्त करने में सबसे विशिष्ट प्रतीक है तथा 'मैं' की अनुभूति आत्मपरकता की शुद्ध अनुभूति है।

स्मरण रखना है कि इस 'मैं' की चेतना का अर्थ 'मैं' शब्द का अर्थबोध नहीं है। यह इस अनुभूति को भोगते हुए जानना है, यह उपभोगी चेतना (Enjoying consciousness) है। वस्तुतः यह 'मैं' (I) में विश्वास करना भी नहीं है, यह 'मैं' से एकरूप है---'मैं' ही है।

किन्तु यदि सूक्ष्म रूप में विश्लेषण किया जाय तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि एक प्रकार से यह भी आत्मपरकता की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं है। ऐसा कहने का बड़ा वैचारिक कारण है। आत्मपरकता को जब 'मैं' (I) में व्यक्त किया जाता है, तो इतना तो है ही कि वह इस रूप में व्यक्त हो रहा है कि अन्य को भी इसका अवबोध हो जा रहा है। यह तो शुद्ध आत्मपरकता नहीं हुयी। इसका अर्थ हुआ कि इस स्तर में आत्मपरकता का रूप निर्धारित किया जा रहा है, वह भी इस रूप में कि अन्य का भी उसका अवबोध हो जा रहा है। 'इस' प्रकार की व्यापकता तो आत्मपरकता के स्वरूप के प्रतिकूल है। आत्मपरकता को पूर्णतया विशिष्ट होना है---तभी वह शुद्ध आत्मपरकता होगी। साथ ही साथ जब 'आत्म' को 'मैं' के द्वारा व्यक्त किया जाता है, तो इसमें एक प्रकार से 'अन्य' की ओर भी संकेत है, जिनसे 'मैं' भिन्न है। अतः 'मैं' कह कर आत्मपरकता को व्यक्त करने में आत्मपरकता पूर्णतया आत्म-केन्द्रित नहीं है, और इस कारण शुद्ध आत्मपरकता नहीं है।

इसी कारण कृष्ण चन्द्र कहते हैं कि आत्मपरकता (Subjectivity) की परिणति 'मैं' से ऊपर उठने में है---'मैं' के निषेध में है (Denial of I)। शुद्ध आत्मपरकता 'मैं' नहीं है। यह शुद्ध अनिर्दिष्टता-अनिर्वचनीयता का क्षेत्र है---परमसत् (Absolute) का क्षेत्र है।

Scanned by TapScanner

(iii) एक संक्षेपीकरण

आत्मपरकता का यह विश्लेषण कुछ ऐसा सूक्ष्म तथा जटिल दोनों हो गया है कि पूरी विवेचना का एक संक्षेपीकरण वांछनीय प्रतीत होता है। कहा जा सकता है कि कृष्ण चन्द्र आत्मपरकता के विश्लेषण का प्रारम्भ उसके सामान्य एवं साधारण अर्थ के अनुसार करते हैं। उनके अनुसार यह 'अर्थ' नहीं वस्तुतः एक समझ है, एक अवगति है 'आत्म' की 'वस्तु' एवं 'विषय' से भिन्नता की। आत्मपरकता---आत्मरूप जीवन जीना है, विषयपरकता नहीं है। कहा जा सकता है कि यह आत्मपरकता का मूल अर्थ है जिसका इसके विश्लेषण के किसी स्तर में त्याग नहीं हुआ है।

अब 'आत्मपरकता' को व्यापक रूप में देखते हुए, कृष्णचन्द्र इसके 'तीन' स्तरों का उल्लेख करते हैं---(क) 'शारीरिक स्तर' (Bodily Subjectivity), 'मानसिक स्तर' (Psychic Subjectivity), तथा 'आध्यात्मिक स्तर' (Spiritual Subjectivity)। शारीरिक स्तर में आत्म अपने को 'शरीर' से एकरूप कर लेता है। इस स्तर के तीन उपस्तर हैं---'दृश्य शरीर' (Body as perceived), 'अनुभूति शरीर' (Body as felt) तथा 'अनुपस्थिति का ज्ञान या तो काल्पनिक प्रत्यक्ष के द्वारा या सचेतन अप्रत्यक्ष के द्वारा' (Knowledge of absence either through Imaginative perception or through conscious non-perception) इस स्तर में आत्म क्रमिकरूप में एक-एक स्तर से अपने को आत्मरूप करता हुआ आत्मपरकता की पूर्ण अनुभूति की ओर अग्रसर होता रहता है।

दूसरा स्तर मानसिक आत्मपरकता (Psychic subjectivity) का है। इसके अंतर्गत सामान्यतः दो प्रकार की मानसिकतायें आती हैं---'प्रतिमा' (Image) तथा 'विचार' (Thought)। इस स्तर में आत्मपरकता की अनुभूति मानसिक प्रतिमाओं तथा विचारों की अनुभूति हैं।

इस स्तर का निषेध आत्मपरकता के तीसरे पर---आध्यात्मिक स्तर पर ले जाता है। इस निषेध एवं परिवर्तन का आधार यह है कि 'आत्मपरकता' अपने को 'अर्थ-संदर्भ' (Context of meaning) से पूर्णतया मुक्त करने में ही अपनी परिणति समझता है---और प्रतिमा एवं विचार अर्थ-संदर्भ में पूर्णतया मुक्त प्रतीत नहीं होते। किन्तु, इस आध्यात्मिक आत्मपरकता के भी 'तीन' उपस्तर हैं---'भावनात्मक अनुभूति' (Feeling), 'अन्तर्दृष्टि' (Introspection) तथा 'अन्तर्दृष्टि के परे का स्तर' (Beyond Introspection)। भावनात्मक अनुभूति के पहले चरण में वास्तविक विचारों से आत्मपरकता ऊपर उठ जाती है, तथा दूसरे चरण में विचार की हर सम्भावना से ऊपर उठ जाती है। इस दूसरे चरण को कृष्ण चन्द्र 'भावना की भावनात्मक अनुभूति' (Feeling of feeling) कहते हैं। 'अन्तर्दृष्टि' आत्मपरकता की स्पष्टतम अनुभूति है। यह मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि नहीं, आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि है यह भी स्पष्ट अनुभूति है। किन्तु इसी अनुभूति में शनैः-शनैः यह भी अवगति होने लगती है कि आत्मपकरता को 'व्यक्त'

Scanned by TapScanner

नहीं किया जा सकता। यहां यह अनुभूति भी होती है कि इस 'मैं चेतना' का निषेध भी हो सकता है, किन्तु उस निषेध को व्यक्त करने का कोई ढंग निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता। यही आत्मपरकता की अन्तर्दृष्टि से––आत्म-अनुभूति से परे की अवस्था है (Beyond Introspection)––और यह, कृष्णचन्द्र के अनुसार पूर्णतया अनिर्दिष्ट परमसत् का क्षेत्र है।

इस पूरे चित्र का कुछ विशद स्पष्टीकरण अगले उपखण्ड में हो जायगा जब हम आत्म के स्वतंत्रता की अनुभूति के क्रम की विवेचना करेंगे, क्योंकि 'स्वतंत्रता की अनुभूति वस्तुतः शुद्ध आत्मपरकता की ही अनुभूति है'।

Scanned by TapScanner